उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा 'धर्मयुग सर्जना पुरस्कार' से सम्मानित

मूल्य : ₹ 40/-

जनवरी-अप्रैल 2024

निकट-37

संपादक : कृष्ण बिहारी

नव वर्षांक

उपहार अंक : कहानी विशेषांक

निकट

कथा-प्रधान त्रैमासिकी

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'धर्मयुग सर्जना पुरस्कार' से सम्मानित

संयुक्त अरब इमारात से शुरू अब भारत से प्रकाशित

वर्ष-17, अंक-37, जनवरी-अप्रैल 2024, मूल्य-₹40

व्यवस्थापक
अशोक कुमार
सलाहकार
राजेन्द्र राव
संपादक
कृष्ण बिहारी
उप-संपादक
रामनारायण त्रिपाठी, लखनऊ
धनंजय सिंह
राधेश्याम यादव,
अबू धाबी
भूपेंद्र कुमार (दुबई)
सहयोगी-राजवंत राज
रियाज़ अहमद
पारुल तोमर
व्यवस्थापक
अभिनव त्रिपाठी
कानूनी सलाहकार
राजेश तिवारी एडवोकेट
2/241, विजय खण्ड,
गोमती नगर, लखनऊ

भारतीय भाषा संवर्धन संस्थान द्वारा सहयोग प्राप्त

आवरण -अभिनव

रेखांकन -रिद्धिमा सिंह,
परमजीत कौर

मूल्य :
भारत में 40/- रुपये
खाड़ी में 20 दिरहम
यू.के. और अमेरिका में 5 डॉलर

सदस्यता शुल्क
1 वर्ष के लिए = रु 500/-
3 वर्ष के लिए = रु 1500/-
निम्न खाता सं. में
नगर / चेक / डी.डी. जमा करें
बैंक का नाम : बैंक ऑफ बड़ौदा
शाखा : सराय मसवानपुर ब्रांच, कानपुर
खाता सं.Krishna Behari Tripathi
28050100010192
IFSC : BARB0SAPRBS

रचनाएं भेजने का पता
निकट कार्यालय-
HIG-46, B BLOCK, PANKI
KANPUR-208020
Mo. 6307435896
ईमेल:
krishnatbihari@yahoo.com

इस अंक में...

संपादकीय-*समय से बात*- कथा साहित्य में यह संक्रमण का दौर है 02

कहानियाँ

दामोदर मावजो- **किसकी लाश, अनु.-** प्रियंका गुप्ता 04
राजेन्द्र राव- **रंगमहल की खोह में** 07
प्रियंवद- **रेत** 11
उषाकिरण खान - **अनुत्तीर्ण** 22
सूर्यबाला - **कहाँ कहाँ से लौटेंगे हम** 25
जयनंदन- **हाई सोसाइटी** 30
अमरीक सिंह दीप - **दाम्पत्य** 34
नवनीत मिश्र - **खेल** 37
सुषमा मुनींद्र- **आकाशी वीरानी** 42
महेश दर्पण - **फ़ितरत** 46
श्यामसुंदर चौधरी- **रिश्ते का सरगम** 50
पंकज सुबीर - **उजियारी काकी हँस रही है** 54
संतोष दीक्षित - **भोरका चाय** 59
मनीष वैद्य - **अर्श से फर्श पर** 65
अमिता डुबे - **मुस्कान मे उजास** 68
प्रेम गुप्ता मानी - **काली बिल्ली** 72
राजेश कदम - **भेड़िये... इन साइड** 77
रत्ना श्रीवास्तव- **आसमां और भी...** 81
कृष्ण बिहारी - **नाता** 87

लघुकथाएं

धनंजय कुमार सिंह, पुष्पा गुप्ता दोसर, महावीर रवांल्टा

साक्षात्कार - प्रख्यात चित्रकार अवधेश मिश्र से बात-चीत 90
मेरी कला में विजूका कहीं दृश्य है तो कहीं परिदृश्य : अवधेश मिश्र

पिछले अंक पर प्रतिक्रिया- कश्मीरा सिंह 94

अगला अंक - निकट - 38
मई - अगस्त 2024

स्वामी, सम्पादक कृष्ण बिहारी एच.आई.जी. - 46, पनकी, बी ब्लाक, कानपुर - 208020 से प्रकाशित
मुद्रक अमन प्रकाशन कानपुर- 9415475817, 8419891954

संपादकीय

समय से बात – 37

कथा साहित्य में यह संक्रमण का दौर है

कहने-सुनने के दौर से ही कथा का जन्म हुआ होगा या हो सकता है कि उससे भी पहले चित्रात्मक या फिर सांकेतिक रूप से कोई बात बताई जाती रही होगी तो वह भी एक अलग किस्म की शैली रही होगी । मैं उसके अनुसंधानात्मक पक्ष की ओर नहीं जाना चाहता । सामान्य ज्ञान से कह सकता हूँ कि निश्चित रूप में बोलियों के माध्यम से बात आगे बढ़ी होगी और धीरे-धीरे भाषा में रूपांतरित होकर लिपिबद्ध हुई होगी । कहानी शब्द स्वयं में ही उत्सुकता जगाता है । जैसे ही कोई कहानी कहने की बात करता है , कान खड़े हो जाते हैं कि कुछ रहस्यमय है । क्या सचमुच कहानी रहस्य का ही दूसरा नाम है । मैं सोचता हूँ कि बोलियों के प्रारम्भिक काल में जब कोई कहानी सुनाता रहा होगा तो उसके आस-पास बैठे लोग कितनी उत्सुकता से उसे सुनते होंगे या कि उनकी आँखों में एक विचित्र सी जिज्ञासा उभरती होगी । आज से लगभग 45 वर्ष पहले मैंने एक अंतर्राष्ट्रीय सायकिल यात्री विमल डे (उन्होंने 1959 में महाराष्ट्र से अपनी यात्रा शुरू की थी) से भेंट के दौरान बात-चीत की थी तब उन्होंने एक रोचक किस्सा सुनाया था । अपनी यात्रा के दौरान वह किसी ऐसी बर्फीली जगह पहुंचे जहां आदिम-युग सा जीवन था ।एक संस्कृति थी जो चली आ रही थी । भोजन का उपाय ही एकमात्र काम था । जीवन-रक्षा के लिए जिसमें ठंड से बचना ही उनकी औषधि थी । भाषा विचित्र थी । विमल डे के लिए उसे समझना बेकार की कसरत थी । गनीमत यह हुई कि एक अलग से दिखने लेकिन अपने ही समान हाथ-पाँव वाले अनजान व्यक्ति को पाकर वे निवासी डर अथवा भय से हिंसक न होकर अजनबी अतिथि के प्रति कुतूहलवश सदय हो उठे । जिस परिवार ने उन्हें आश्रय दिया उसमें एक वृद्धा थी जो हर रात एक ही कहानी सुनाती थी । कहानी के कई प्रसंगों को सुनते हुए परिवार के लोग हंस पड़ते थे । उन्हें हँसता देख विमल डे भी हँसते । हर रात वही कहानी और कहानी के उन्हीं प्रसंगों पर हंसी । विमल डे को भी जैसे कहानी याद हो गई हो , वह यंत्रचालित से हंस पड़ते। हर रात एक ही कहानी और श्रोताओं की एक-सी स्थिति । उनसे यह घटना सुनकर विचित्र तो लगा लेकिन क्या यह सत्य नहीं है कि हम अनेक कथाओं को जितनी बार पढ़ते हैं उतनी बार , बार-बार द्रवित होते हैं । 'हार की जीत' कहानी मैंने सैकड़ों बार पढ़ी और हर बार मुस्कराया , हर बार आँख भरी ; यही हाल रामचरितमानस पढ़ते हुए भी होता है लेकिन ऐसा उन्हीं रचनाओं को पढ़ते हुए होता है जो कालजयी होती हैं अन्यथा कहानियाँ तो हर दिन लिखी जा रही हैं ।

हिन्दी कहानी का इतिहास बहुत पुराना नहीं है । स्वतन्त्रता पूर्व लिखी गईं कहानियाँ ग्रामीण परिवेश और तत्कालीन परिस्थितियों को कथानक बनाकर लिखी गईं । उनमें आदर्श की स्थापना थी । स्वतन्त्रता के बाद की कहानियाँ गत्यात्मकता की कथावस्तु से जुड़ीं । सामाजिक-औद्योगिक परिवर्तनों ने साहित्य में जगह बनाई । संयुक्त परिवारों की समस्याओं और सामाजिक विषमताओं के साथ-साथ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में होते बदलाव आदर्श की जगह यथार्थ या यह कहें कि आदर्श के साथ-साथ यथार्थ को भी साधने की एक कोशिश रचनाओं में दिखी । पिछली सदी के सातवें दशक तक हिन्दी कहानी अपने सशक्त स्वरूप तक पहुँच ही रही थी कि कहानी के झंडाबरदारों ने उसका अपहरण कर लिया और तब जैसा कि अपहृत के साथ होता है , वही कहानी के साथ भी हुआ । विभिन्न ट्रेड यूनियनों के नेताओं की तरह कहानी के नेताओं ने प्रयोगों की लाइन लगा दी । अकहानी से भूखी-नंगी कहानियों तक यथार्थ के नाम पर खिलवाड़ शुरू हुए । वादी आंदोलनों ने कहानी को अपने-अपने एजेंडा पर चलाने की कोशिश की । यह अलग बात है कि परचम लहराने की कोशिश में किए गए आंदोलनों की उम्र ज्यादा नहीं होती और वे सभी आंदोलन ध्वस्त होते गए जिनकी नींव में स्कूल प्रबन्धक होने की खाद पड़ी थी । कहानी की फसल कभी-कभी लहलहाती और अधिकतर सड़ती हुई-सी दिखी । ऐसे दौर में भी उन कहानीकारों की रचनाओं की चर्चा हुई जो साहित्य के प्रति उसकी मूल भावना के साथ जुड़े थे । एजेंडा प्रधान रचनाओं की उम्र उल्काओं की उम्र होती है ! बहरहाल, जैसा भी दौर रहा हो ; कहानी लिखी और पढ़ी गई । मेरी पीढ़ी के रचनाकार और पाठक उस दौर को कहानी और पत्र-पत्रिकाओं की लोकप्रियता की दृष्टि से स्वर्ण-काल की तरह याद करते हैं । अब न रहे वो पीने वाले अब न रही वो मधुशाला । न उस दौर की चर्चित पत्रिकाएँ बचीं और न पाठकों की वह जमात जो प्रिंट के प्रति दीवानगी की हद तक पागल थी । इक्कीसवीं सदी के एक दशक पहले से ही इलेक्ट्रोनिक मीडिया ने ऐसे-ऐसे उपादान दे दिये जिनसे सिनेमाहाल और पुस्तकों की उपादेयता लगभग छिन्न-भिन्न हो गई । वक़्त कभी ठहरा तो नहीं रहा मगर उसकी चाल बहुत तेज हो गई । जितनी तीव्र गति से वह भागने लगा उतनी ही तीव्र गति से घटनाएँ घटने लगीं । रचनाकार के पास तेजी से घटती घटनाओं को पकड़ पाने और उनपर रुककर सोच-विचार का समय ही नहीं रहा या कहूँ कि रचनाकार उनके पीछे हाँफने लगा । गति के साथ वह चल नहीं सका तो स्मृति के आधार पर जा पहुंचा ।

आज की हालत तो विचित्र है । उपभोक्ता सभ्यता अब संस्कृति में बदल चुकी है । उत्पादन ने साहित्य की फसल को भी प्रभावित किया है ।